आ. श्री कैलाससागर सूरि ज्ञानमंदिर
महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा
गांधीनगर. पिन-382009

Copy-2
Delisted
6/6/2019
Received
19-2-97

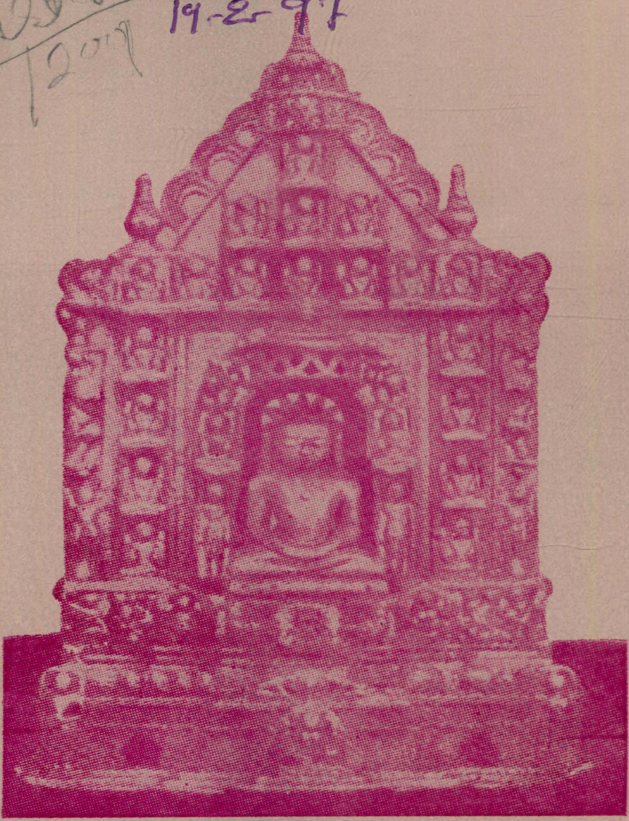

तित्थयर

वर्ष २० : अंक ६ अक्टूबर १९९६

जैन भवन

आदरणीय रचनाकार सहयोगी,

आगामी महावीर जयन्ती उपलक्ष में प्रकाशित होने वाली 'तित्थयर' के प्रथम विशेषांक हेतु रचनाएँ भेजकर अपना रचनात्मक सहयोग दें।

5 58

संपादन
राजकुमारी बेगानी
लता बोथरा

आजीवन : एक हजार रुपये
वार्षिक शुल्क : पचपन रुपये
प्रस्तुत अंक : पाँच रुपये

प्रकाशक
जैन भवन
पी-२५, कलाकार स्ट्रीट,
कलकत्ता-७०००७

मुद्रक
अनुप्रिया प्रिन्टर्स
६ ए, बड़ौदा ठाकुर लेन
कलकत्ता-७

सूची

साधन स्रोत १६५
प्राकृत जैन आगम में श्रीकृष्ण साहित्य १७०
प्रवचन १७३
चैत्रगच्छ का संक्षिप्त इतिहास १७९
महाराजा श्रेणिक १८७
संकलन १९३
जैन पत्र-पत्रिकाएँ कहाँ/क्या १९४

3732

जिसने दुःख को समाप्त कर दिया है उसे मोह नहीं है, जिसने मोह को मिटा दिया है उसे तृष्णा नहीं है। जिसने तृष्णा का नाश कर दिया है उसके पास कुछ भी परिग्रह नहीं है, वह अकिंचन है।

NAHAR

Interior Decorator

5/1, Acharya Jagadish Chandra Bose Road

CALCUTTA-700 020

Phone : 247-6874   Resi. : 244-3810

मध्यकालीन राजस्थानी जैन इतिहास के
।। साधन-स्रोत ।।

डा० श्रीमती राजेश जैन

(पूर्वानुवृति)

५. वंशावलियाँ :

वंशावलियाँ भी जैन इतिहास को जानने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं। ये जैन समुदाय में उत्पन्न होने वाले प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन पर तो प्रकाश डालती ही हैं, साथ ही विभिन्न जातियों एवं गोत्रों की उत्पत्ति एवं विकास के सम्बन्ध में भी बताती हैं। इनसे राजनीतिक इतिहास का निर्माण करने में भी सहायता मिलती है। राजा मालदेव ने जोधपुर को शेरशाह से तेजागढय्या की सहायता से पुन:प्राप्त किया था, यह तथ्य हमें एक वंशावली से ही ज्ञात होता है।[1] १६वीं से १८वीं शताब्दी की ओसवाल वंशावलियाँ बीकानेर में अगरचंद नाहटा के संग्रहालय में हैं। ज्ञानसुन्दर के अधिकार में भी वंशावलियों का अच्छा संग्रह था।[2] इनसे मन्दिरों एवं प्रतिमाओं के निर्माण तथा तीर्थयात्रा के लिये गठित संघों का विवरण भी मिलता है।

६. तीर्थ माला और तीर्थ स्तवन :

ये जैन मुनियों द्वारा लिखित एवं संग्रहीत विवरण हैं, जिन्हें वे विभिन्न तीर्थों का चातुर्विध संघ के साथ की गई धर्मयात्राओं के समय अंकित करते थे। कई बार वे अकेले भी यात्रा करते थे। इनमें तीर्थों के नाम, उनका इतिहास, सम्बद्ध चमत्कार, तीर्थ का महत्व, मन्दिरों व प्रतिमाओं आदि का वर्णन होता है। १४वीं शताब्दी के आसपास जिनप्रभसूरि रचित "विविधतीर्थकल्प" और सौभाग्यविजय तथा शीलविजय कृत "तीर्थमाला" कुछ जैन सन्तों की जीवन झाँकी प्रस्तुत करने की दृष्टि से भी महत्त्व है। इनमें मन्दिरों के निर्माण और प्रतिमाओं की स्थापना का विवरण भी मिलता है। धनपाल विरचित, कविता "सत्यपुरीय महावीर उत्साह" में सांचोर, आहड़, श्रीमाल, कोरटा और नरैणा आदि तीर्थ स्थानों का वर्णन है, जो १०वीं शताब्दी में अस्तित्व में थे।[3] १२वीं शताब्दी के सिद्धर्षि के "सकल तीर्थ स्तवन" में तीर्थ स्थानों की सूची है।[4]

---

१. अने०, भाग २, सं० ६, पृ० २४९।

२. एसिटारा, पृ० १६।

३. जैनाशासन, अहमदाबाद, ३ पृ० १।

४. गाओसि, जि० ७६, पृ० १५६।

१४४६ ई० में रचित "उपदेश सप्ततिका" में भी कुछ तीर्थों का वर्णन है।[१] जिनवर्द्धन सूरि रचित "पूर्व देश तीर्थ माला", सिद्धसेन सूरि का "सकल तीर्थ स्तोत्र" शांतिकुशल विरचित "गौड़ी पार्श्व तीर्थमाला" भी तीर्थो के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी देती हैं। धर्मघोष गच्छ के पद्मानंद सूरि के शिष्य हरिकलश ने कई देशों की यात्राएं कीं। इनके द्वारा रचित निम्न तीर्थमालाएं ज्ञात हैं[२] —कुरुक्षेत्र तीर्थमाला, दक्षिण देश तीर्थमाला, गुर्जर सोरठ-देश तीर्थ-माला, दिल्ली मेवाती देश चैत्य परिपाटी, बागड़ देश तीर्थमाला, आदीश्वर बीनती, जीरावल्ला बीनती आदि।[३] मध्यकाल में चैत्य परिपाटियां भी लिखी गई। इनमें विभिन्न संघों के तीर्थ यात्रा पर जाने, वहां के मन्दिरों, उनके नामों, अवस्थिति, दिशा, यहां तक कि मूर्तियों की संख्या भी अंकित की जाती थी। इनमें नागर्षि की "जालोर चैत्य परिपाटी", जिनकुशल सूरि की "जैसलमेर चैत्य परिपाटी" जयहेमसी की "चित्रकूट परिपाटी", पद्मानंद सूरि की "नागौर चैत्य परिपाटी" व "बदनौर चैत्य परिपाटी" तथा "मेड़तवाल परिपाटी" उल्लेखनीय है।[४] जीराबाला, वर्द्धनपुर की चैत्य परिपाटियों से ज्ञात होता है कि ये दोनों स्थान कुंभा के राज्य में थे।[५] कुंभा के समय "पार्श्वनाथ स्तवन" तथा "नाडलाई महावीर स्तवन" रचे गए, जिसके रचनाकार अज्ञात हैं।[६] कनकसोम के स्तवन से सिरोही में तुरासान खान द्वारा किए गये प्रति-माओं के विध्वंस की जानकारी मिलती है।[७] विनयप्रभ का "तीर्थयात्रा स्तवन" भी तीर्थो सम्बन्धी तथ्यों पर पर्याप्त प्रकाश डालता है।

७. सनद एवं पत्र :

समकालीन इतिहास को जानने के लिये सनद एवं पत्र भी एक विश्वसनीय साधन है। मध्यकाल में राजपूताना के शासकों एवं जैन आचार्यों के बीच पत्र व्यवहार होता था। शासकों ने मन्दिर निर्माण हेतु जैन आचार्यों को भूमि-खण्ड आवंटित किए थे तथा पूजा, प्रक्षालन आदि के व्यय के लिए अनुदान इत्यादि भी दिए थे जिनसे सम्बन्धित सनदें जैन मुनियों के अधिकार में रही हैं।

---

१. एसिटारा, पृ० १३।
२. शोप वर्ष ३७, अंक २, पृ० ३८।
३. ये ग्रन्थ अभय जैन ग्रन्थ भण्डार बीकानेर में है।
४. एसिटारा, पृ० १४।
५. तारा मंगल—महाराणा कुम्भा और उनका काल, पृ० १५०।
६. वही, पृ० १५०।
७. बीजैलेस, पृ० २७।

साथ ही राजनीतिज्ञों की सेवा से प्रभावित होकर, विभिन्न रियासतों के शासन प्रमुखों ने उनके धर्म से सम्बन्धित जो अनुदान व रियायतें प्रदान की थीं, उनकी सनदें भी उनके उत्तराधिकारियों के पास सुरक्षित हैं। स्थाई अनुदानों के दानपात्र, ताम्रपत्रों पर भी लिखे होते थे। पहले इनमें संस्कृत भाषा का प्रयोग किया जाता था, किन्तु बाद में स्थानीय भाषा का प्रयोग किया जाने लगा। दानपत्र में राजा का नाम, अनुदान पाने वाले का नाम, कारण, भूमि का विवरण, समय, दानदाता का नाम आदि का उल्लेख होता था।

८. विज्ञप्ति :

ये जैन मुनियों को प्रेषित एक प्रकार के निमन्त्रण पत्र थे, जो सम्प्रदाय विशेष के जैन संघों द्वारा मुनियों को आगामी चातुर्मास निश्चित स्थान पर व्यतीत करने के लिए प्रेषित किये जाते थे। संघ के किसी सदस्य के कर्मों व कार्यकलापों के प्रायश्चित हेतु ये आदेश पत्र के रूप में, तथा सम्पूर्ण मानवता के प्रतिसद्भावनाएँ सम्प्रेषित करने के लिये भी ये तैयार किये जाते थे। विज्ञप्ति व आदेश पत्रों को स्वतन्त्र साहित्यिक रचना के रूप में स्थान नहीं दिया गया है, फिर भी ये पत्र भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि हैं। तत्कालीन पत्र साहित्य, संस्कृति और कला के अन्यतम प्रतीक हैं। समसामयिक महत्व की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक बातों का प्रामाणिक उल्लेख इनमें मिलता है। कतिपय पत्र तो महाकाव्य की संज्ञा से अभिहित किए जा सकते हैं।[१] ये पत्र तत्कालीन परिस्थितियों के अच्छे निदर्शन तो हैं हीं, साथ ही भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी उपादेय है।[२] अन्य कई दृष्टियों से भी ये महत्वपूर्ण हैं। ये सामान्यतः प्रेषक समुदाय के बारे में सचित्र जानकारी भी देते हैं। स्थानीय इतिहास एवं घटनाओं को जानने के दृष्टिकोण से इनकी महती उपादेयता है। इनमें स्थानीय जनता के व्यापार, वाणिज्य, रोजगार, कला एवं उद्योग धन्धों सम्बन्धी सामग्री होने से भी ये लाभकारी हैं। जैन कला के इतिहास की दृष्टि से भी ये अत्यन्त उपयोगी स्रोत हैं। विज्ञप्ति पत्र जैन समाज की सन्तों के प्रति श्रद्धा भावना के द्योतक हैं, तथा तत्कालीन परिस्थितियों पर विशद प्रकाश डालते हैं। इनसे स्थान विशेष की भौगोलिक विशेषताओं का ज्ञान भी प्राप्त होता है। ये मुख्य रूप से जैसलमेर, चित्तौड़, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, सिरोही जैसे नगरों से प्रेषित किये जाते थे। सचित्र विज्ञप्ति पत्रों की परम्परा १६वीं शताब्दी से विजयसेन सूरी वाले पत्र से प्रारम्भ होती है।[३] अकबर,

---

१. मुहस्मृग, पृ० ८५५।
२. वही, पृ० ८५५।
३. नाहटा, राजस्थान वैभव पृ० १२।

जहाँगीर एवं शाहजहाँ के समय इनके निर्माण में शाही चित्रकारों का भी उपयोग किया जाता था।

९. सचित्र हस्तलेख :

बीकानेर, जयपुर, नागौर, जैसलमेर आदि के जैन ग्रन्थ भण्डारों में कई सचित्र हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रहित हैं। ये जैन मतावलम्बियों की सुसंस्कृत अभिरुचि एवं परिष्कृत कला ज्ञान का दिग्दर्शन कराते हैं। राजस्थान में चित्रकला की समृद्धि में जैनों का अपरिमित योगदान है। निर्माण तिथि अंकित होने के कारण ये सचित्र ग्रन्थ जैन चित्र कला एवं प्रकारान्तर से भारतीय चित्रकला का इतिहास उद्घाटित करते हैं, जिसका प्रारम्भ १२वीं शताब्दी की काष्ठ पट्टिकाओं और अलंकृत ताड़पत्री प्रतियों से माना जाता है। वस्त्र पट्ट पर तीर्थों का चित्रण करने की परम्परा होने से तत्कालीन तीर्थों की स्थिति भी स्पष्ट होती है। इन चित्रों से जैन-धर्म के सांस्कृतिक स्तर का बोध होने के साथ-साथ चित्रकला के इतिहास में जैनधर्म का योगदान, कलाकारों के नाम, रंगों का प्रयोग एवं संयोजन आदि तथ्यों का ज्ञान होता है। भौगोलिक वस्त्र पट्ट भी विक्रम की १५वीं शताब्दी से बराबर बनते आ रहे हैं, जो जैन भौगोलिक मान्यताओं को जानने के लिये सचित्र एलबम है।[१]

(स) विदेशियों के कार्य एवं वृत्तान्त :

१०वीं शताब्दी से पूर्व की स्थिति पर प्रकाश डालने वाले यूनानी, चीनी और अरब यात्रियों के वृत्तान्त हैं जिससे पश्चिमी भारत में जैन धर्म की भूमिका की स्वल्प जानकारी मिलती है। मध्यकाल में मुस्लिम व फारसी इतिहासकारों की कृतियों में भी जैन मत का यत्किंचित सन्दर्भ है। उत्तर मध्यकाल में व उसके बाद कई विदेशी, विशेषतः यूरोपीय लेखकों ने भारत के धर्म, कला, साहित्य, स्थापत्य, समाज, रीति-रिवाज आदि के बारे में लिखा है, जिससे भी राजस्थान में जैन-धर्म की ऐतिहासिकता पर कुछ प्रकाश पड़ता है। कतिपय विदेशी लेखकों ने तो जैन धर्म का अच्छा अध्ययन करके अपना महत्व-पूर्ण योगदान भी दिया है। जर्मनी के हर्मन जेकोबी, विंटरनिट्ज, पिशेल, ग्लाशनेप, शुब्रिंग एवं एल्सडोर्फ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। फ्रांसीसी विद्वान गुर्नोट और ओलिविट लेकोम्बे के नाम भी महत्त्वपूर्ण हैं। अंग्रेजी लेखकों में श्रीमती स्टीवेंसन ने भी जैन धर्म का अध्ययन करके महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।[२]

---

१. वही, पृ० १२।
२. जैसेस्कू पृ० १।

इटली के डॉ० एल० पी० कैसी तोरी राजस्थान और उसके साहित्य के प्रेमी थे। इनके शोध का विवरण एशियाटिक सोसाइटी ने प्रकाशित किया।[२] राजस्थान के साहित्य व इतिहास के सम्बन्ध में कुछ अंग्रेज अधिकारियों ने भी योगदान दिया जिसमें अलेक्जेण्डर किलोंक, फर्ब्स, कनिंघम, कार्लाइल एवं गैरिक आदि मुख्य हैं। फर्ब्स ने आबू के कई शिलालेखों की नकलें की और देलवाड़ा के दोनों जैन मन्दिरों की कारीगरी का वृत्तान्त लिखा। भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग के तत्कालीन अध्यक्ष, कनिंघम ने राजपूताना के कई शिलालेखों एवं शिल्प आदि पर प्रकाश डाला है। अशोक के काल का बैराठ का लेख, महाराणा कुंभा सम्बन्धी कई तथ्यों तथा कई पुराने सिक्कों को प्रकाश में लाने का श्रेय इनको ही है। कार्लाइल ने भी कई शिलालेखों व सिक्कों का पता लगाया। गैरिक, चित्तौड़ के कीर्ति स्तम्भ की बची हुई दो शिलाओं तथा रावल समरसिंह के समय के १२७३ ई० के चित्तौड़ के शिलालेख का चित्र सर्वप्रथम प्रसिद्धि में लाये[३]। नार्मन, ब्राउन, बिन्सेन्ट स्मिथ, लेपेल ग्रिफिन, मेकडोनेल, जी० एफ० मूर, जे० फर्ग्युसन, डा० गोएट्ज हॉवेल आदि ने भी अपनी कृतियों में भारतीय जैन धर्म के पहलुओं को उजागर किया है। जर्मनी के डा० बुहलर ने भी इस प्रदेश के ऐतिहासिक शोध कार्य में अपना योगदान दिया। जर्मन विद्वान कीलहॉर्न, अंग्रेज विद्वान पीटर पीटर्सन, डॉ० वेब, डॉ फ्लीट एवं सेसिल बेडाल नामक विद्वानों ने भी राजस्थान के इतिहास की कई बातों को प्रकाश में लाने का कार्य किया, जिससे मध्यकालीन जैन धर्म की स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। ●

---

१. राभा, अप्रैल १९५०।
२. मुहस्मृग, पृ० ६३०-६४०।

सौजन्य से :

BOYD SMITHS PVT. LTD.

B-3/5, GILLANDAR HOUSE

8, Netaji Subhas Road,

Calcutta-700 001

Phone Office : 220-8105/2139

Resi. : 244-0629/0319

प्राकृत जैन आगम में श्रीकृष्ण साहित्य

श्री राजेन्द्र मुनि शास्त्री (पूर्वानुवृत्ति)

(५) प्रश्नव्याकरण

यह दशम अंग ग्रन्थ है। ५ धर्म द्वार तथा ५ अधर्मद्वार के रूप में प्रश्न व्याकरण के दो खण्ड हैं। पूर्वखण्ड में ५ आस्रवद्वार हैं और उत्तरखण्ड में संवरद्वार हैं जिनकी संख्या भी ५ हैं। रुक्मिणी एवं पद्मावती के साथ विवाह के लिए श्रीकृष्ण को जो युद्ध करने पड़े उनका वर्णन प्रश्नव्याकरण के पूर्व खण्ड के चतुर्थ आस्रवद्वार में किया गया है।[१] (क)

कृष्ण के चरित्र का श्रेष्ठ अर्द्ध चक्रवर्ती राजा के रूप का उनकी रानियों, पुत्रों तथा परिवारजनों का वर्णन तथा श्रीकृष्ण को चाणूरमल्ल, रिष्टबैल तथा काली नामक महान विषैले सर्प का हन्ता, यमलार्जुन के नाश करने वाले, महाशकुनि एवं पूतना के रिपु, कंसमर्दक, जरासन्ध नष्टकर्त्ता आदि उनके विविध गुणों को दर्शाया गया है। और, इस प्रकार उनके व्यक्तित्व की महानता के दर्शन इस आगम के द्वारा हमें दिखलाई देते हैं।[२] (ख)

(६) निरयावलिका

इसमें ५ वर्ग हैं। ५ वर्गों में ५ उपांग अन्तर्निहित हैं पाँचवें उपांग वृष्णी-दशा के १२ अध्ययन हैं। प्रथम अध्ययन में द्वारकाधिपति वासुदेव श्रीकृष्ण का वर्णन मिलता है। चित्रित प्रसंग उस समय का है जब भगवान नेमिनाथ

---

१. (क) भुज्जो भुज्जो बलदेव-वासुदेवा य पवरपुरिसा महाबलपरक्कमा, महाधणु वियट्ठका, महासत्तसागरा दुद्धरा।—प्रश्नव्याकरणसूत्र चतुर्थ-अध्याय, संपादक अमरमुनिश्री, सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा।

(ख) मेहुणसण्णासंपगिद्धाय मोहभरिया सत्थेहिं हणंति एक्कमेक्कं। विसय-विस उदीरएसु अवरे परदारेहिं हिम्मति × × × मेहणमूलं य सुव्वए तत्थ तत्थ वत्तपुव्वा संगामा जणक्खयकरा सीयाए दोवईए कए रुप्पिणीय पउमावईए।

—प्रश्न-व्याकरण सूत्रचतुर्थअध्ययन, पृ० ४७० संपादक वही।

२. एवं खलु जंबू तेणं कालेणं तेणं एमएणं बारवई नामं नयरी होत्था, दुवालस जोयणायामा जावपच्चक्खं देवलोयभूया।···तत्थणं बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया होत्था जाव पसासेमाणे विहरई।—वण्हिदसाओ,

—पृ० ७१२

संपादक—पुप्फभिक्खू प्रकाशक सूत्रागमप्रकाशन समिति, गुडगांव (पंजाब)।

का आगमन रैवतक पर्वत पर होता है और श्रीकृष्ण की धर्मप्रियता और भगवान के प्रति श्रद्धा की भावना अभिव्यक्त हुई है।[३]

प्रथम अध्ययन निषधकुमार का है, जो कृष्ण के बड़े भ्राता राजा बलदेव तथा रेवती के पुत्र थे। निषध कुमार भगवान अरिष्टनेमि की सेवा में प्रव्रज्या ग्रहण कर आत्म कल्याण करते हैं। यह उपांग सूत्र है।

(७) उत्तराध्ययन

इस आगम ग्रन्थ में भगवाग महावीर के अन्तिम समय महानिर्वाण काल में दिए गए उपदेश संकलित हैं। उत्तराध्ययनमें कुल ३६ अध्ययन हैं, और इसके २२वें अध्ययन में श्रीकृष्ण कथा के सूत्र मिलते हैं। श्रीकृष्ण द्वारा अरिष्टनेमि के विवाहोत्सव का प्रबन्ध किया जाना, विवाह में एकत्रित अतिथियों के आहार हेतु एकत्रित मूक पशुओं की पुकार सुनकर अरिष्टनेमि का विरक्त हो जाना, रैवतक पर्वत पर जाकर उनका तपस्या करना आदि प्रसंग विस्तार से विवेचित है। इस अध्ययन से यह तथ्य भी प्रकट होता है कि श्री कृष्ण का जन्म सौरियपुर में हुआ था। कृष्ण के माता-पिता, उनका वासुदेव राजा होना, नेमि के लिए उनके द्वारा राजीमती की याचना करना आदि उल्लेख हैं।

निष्कर्ष

मैंने इस अध्याय में जैन प्राकृत श्रीकृष्ण साहित्य के कतिपय ग्रंथों को लेकर अपना अनुशीलन प्रस्तुत किया है। इसमें क्रमशः सात ग्रन्थ हैं। (१) स्थानांग में श्रीकृष्ण सम्बन्धी कुछ प्रसंग और उनकी आठ पटरानियों का उल्लेख मिला है। (२) समवायांग में ५४ उत्तमपुरुषों का विवेचन है इनमें वासुदेव के रूप में प्रतिष्ठित श्रीकृष्ण का विस्तार से विवेचन है। प्रति वासुदेव का हनन उनके द्वारा किया गया है। यह ठीक अवतारी पुरुष कृष्ण से मिलता है। (३) ज्ञाताधर्म कथा में २२वें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण के

---

३. सोरियपुरम्मिनयरे आसिराया महड्ढिए।
वसुदेवत्ति नामेणं रायलक्खणसंजुए।।
तस्स भज्जा दुवे आसि रोहिणी देवई तहा।
तासिं दोण्णं दुवे पुत्ता इट्ठा रामकेसवा।
वज्जरिसहसंघयणे समचउरंसो झसोयरो।
तस्स राईमई कन्नं भज्जं जायई केसवो।।
उत्तराध्ययनसूत्र अ० २२, सम्पादक—स्वयंशोधकर्ता (राजेन्द्रमुन्द्रि)
गाथा—१, २, ३, ८, १०, ११, २५ व २७ में कृष्ण सम्बन्धी उल्लेख उपलब्ध है।

सम्बन्ध में बतलाया गया है। पांडव भी इसमें चर्चित हैं। कुन्ती पांडवों की जननी और श्रीकृष्ण की बुआ है। थावच्चापुत्र प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं। (४) अन्तकृद्दशांग में द्वारकावैभव, श्रीकृष्ण वासुदेव तथा गौतमकुमार की दीक्षा तथा श्रीकृष्ण पुत्र गजसुकुमार की कथा आई है। अन्त में द्वारका विनाश और श्रीकृष्ण का देहत्याग भी विवेचित है। कृष्ण एक शक्तिशाली राजा और परदु:खकातर बतलाये गये हैं। उनके भावी जन्म पर प्रकाश डाला गया है। (५) प्रश्नव्याकरण ग्रंथ में दो खण्ड हैं उत्तरखण्ड में ५ संवर द्वार हैं। पूर्वखण्ड में रुक्मिणी और पद्मावती से विवाह करने के लिए जो युद्ध श्रीकृष्ण को करने पड़े उनका विवेचन है। श्रीकृष्ण एक अर्ध चक्रवर्ती राजा बताये गये हैं तथा उनकी कुछ बाललीलाएँ जैसे रिष्ट बैल और कालिय नामक विषैले नाग की हत्या, पूतना मर्दन, कंस हनन और जरासंध वध का वर्णन तथा उनमें विद्यमान गुणों का विवेचन और उनकी रानियों का वर्णन तथा उनकी महानता दिखाई है। (६) निरयावलिका में रैवतक पर्वत पर नेमिनाथ का आगमन और द्वारकाधिपति श्रीकृष्ण वासुदेव का वर्णन तथा नेमिनाथ का उपदेश सभी में श्रीकृष्णागमन दिया गया है। श्रीकृष्ण की धर्मप्रियता और २२वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ के प्रति श्रद्धा का वर्णन तथा राजा बलदेव और उनकी रानी रेवती के पुत्र निषधकुमार का नेमि की सेवा में जाना और प्रव्रज्या ग्रहण इत्यादि विवेचन है। (७) उत्तराध्ययन में भगवान महावीर का उपदेश संकलित है। कुल ३६ अध्ययनों में से २२वें अध्ययन में श्रीकृष्ण कथा के सूत्र हैं। श्रीकृष्ण के द्वारा अरिष्टनेमि के विवाहोत्सव का प्रबन्ध, बारातियों के आहार के लिये जुटाये गये पशुपक्षियों को देखकर नेमी को वैराग्य उत्पन्न होना, रैवतक पर्वत पर तपस्या के लिये जाना, राजीमती द्वारा नेमि से याचना और श्रीकृष्ण का जन्म सोरियपुर में हुआ। यह तथ्य भी हमारे हाथ लगता है।

प्रवचन

गुरुदेव ने सोमचन्द्र मुनि को अध्ययन शुरू करवाया। बहुत थोड़े वर्षों में उन्होंने जिनागमों का अध्ययन कर लिया। संस्कृत-प्राकृत भाषा के भी वे ज्ञाता बन गये। वेदान्त, बौद्ध, न्याय आदि दर्शनशास्त्रों के भी वे पारंगत हो गये। ज्ञानोपासना, ज्ञानप्राप्ति ही उनका जीवनरस बन गया। तरुण अवस्था पूर्ण हुई, यौवन में प्रवेश हुआ। एक दिन उन्होंने गुरुदेव से सुना कि पूर्वकालीन भद्रबाहुस्वामी वगैरह महापुरुषों के पास 'पदानुसारी प्रज्ञा' थी। इसकी वजह से वे 'चौदह पूर्व' के ज्ञाता बने थे। उनके मन में इस बात को लेकर कई दिनों तक चिंतन चलता रहा। एक दिन उन्होंने गुरुदेव को विनयपूर्वक अपने मन की बात बता दी :

'गुरूदेव, मैंने मेरी अल्प बुद्धि से जिनागमों का ज्ञान तो संपादन किया है, परन्तु विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिये मैं देवी सरस्वती की उपासना करना चाहता हूं। इसलिए कश्मीर जाना चाहता हूं। यदि आपकी आज्ञा हो और आपको उचित लगता हो तो।'

आचार्यदेव ने सोमचन्द्र मुनि में ज्ञानप्राप्ति की असाधारण तृषा देखी। समस्त द्वादशांगी का परिपूर्ण ज्ञान संपादन करने की तीव्र इच्छा देखी। फिर भी वे भावावेश में नहीं बह गये। प्रिय शिष्य की प्रशस्त इच्छा को देखते हुए गुरुजन प्रायः भावावेश में बह जाते हैं। 'इसकी अच्छी भावना है·· तो इजाजत दे दो···।' ऐसा होता है। परन्तु आचार्य श्री देवचन्द्रसूरिजी भावप्रवाह में बहनेवाले नहीं थे। उन्होंने ध्यान के आलोक में सोमचन्द्र मुनि का भविष्य देखा 'क्या सोमचन्द्र मुनि देवी सरस्वती के अनुग्रह के पात्र बनेंगे ?'

मात्र जैन संघ को ही नहीं, मात्र देश को ही नहीं, परन्तु पूरे विश्व को हेमचन्द्रसूरि जैसी अद्वितीय ज्ञानप्रतिभा प्राप्त हुई, यह मात्र दैवयोग नहीं था। परन्तु समर्थ गुरु और समर्पित शिष्य के सुभग संयोग की उपलब्धि थी। देवचन्द्रसूरिजी समर्थ गुरु थे। हेमचन्द्रसूरिजी समर्पित शिष्य थे। समर्पित और मेधावी शिष्य, समर्थ गुरु की कृपा का पात्र बनता है और अपूर्व प्रतिभा का धनी बनता है।

सोमचन्द्र मुनि की इच्छा थी कश्मीर जाकर देवी सरस्वती की आराधना करने की, परन्तु वह इच्छा भी गुरुदेव के अधीन कर दी थी। गुरुदेव ने

गम्भीरता से सोचा उस इच्छा के विषय में। जब उनको सफलता का संकेत मिला तब उन्होंने सोमचन्द्र मुनि को काश्मीर जा कर देवी सरस्वती की आराधना करने की इजाजत दी। साथी मुनिवरों के साथ सोमचन्द्र मुनि ने शुभ मुहूर्त में प्रस्थान भी कर दिया।

पहला ही मुकाम था। 'उज्जयन्तावतार' नाम के चैत्य में रात्रि के समय, सोमचन्द्र मुनि ने मांत्रिक स्नान कर, सरस्वती का ध्यान प्रारम्भ किया। ध्यानलीन हो गये। तमन्ना थी सरस्वती का वरदान प्राप्त करने की? कश्मीर तो जब पहुंचेंगे तब पहुंचेंगे...! 'उज्जयन्तावतार' जिनमंदिर का स्थान उनको उपयुक्त लगा और आराधना शुरु कर दी। ध्यान लग गया। लीनता प्राप्त हो गई। मध्य रात्रि का समय हुआ। और सोमचन्द्र मुनि के प्रति आकर्षित होकर, वागीश्वरी देवी सरस्वती साक्षात् प्रगट हुई। उनके वाम कर में पुस्तक थी और दक्षिण कर में वरदायिनी अक्षमाला थी। उज्ज्वल कान्तिमय देहप्रभा थी उनकी। ऐसी देवी भारती, प्रफुल्लित पद्म की पंखुड़ियाँ सदृश नेत्रों से स्नेहार्द भाव से सोमचन्द्र मुनि को देखती हुई कहती:

'हे मुनिवर, मुझे प्रसन्न करने के लिये अब तुझे काश्मीर जाने की आवश्यकता नहीं है। तेरी भक्ति से एवं ध्यान से मैं यहाँ ही तेरे पर प्रसन्न हुई हूं। मेरे प्रसाद से तू सिद्ध सारस्वत होगा।' ऐसा वरदान देकर तुरन्त ही विद्युत की तरह अदृश्य हो गई।

सोमचन्द्र मुनि का शरीर रोमांचित हो गया था। उनकी आँखों से हर्षाश्रु बह रहे थे। उनकी प्रज्ञा सूर्यप्रभा के समान तेजस्वी बन गई थी। शेष रात्रि उन्होंने देवी सरस्वती की स्तवना में व्यतीत की। प्रभात में आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर वे वापस गुरुदेव के पास पहुँचे।

'मत्थएण वंदामि' बोलते हुए उपाश्रय में प्रवेश कर, गुरुदेव के उत्संग में अपना सर रख दिया। गुरुदेव ने अपने प्रिय शिष्य के सर पर हाथ रखा और अपूर्व हर्ष महसूस किया। देवी सरस्वती की परम कृपा से सोमचन्द्र मुनि के मुंह पर तेजस्विता की किरणें फैल रही थी। सोमचन्द्र मुनि ने रात्रि का समग्र वृत्तान्त गुरुदेव को कह सुनाया। गुरुदेव को अति हर्ष हुआ। उन्होंने देवी सरस्वती की स्तुति की और सोमचन्द्र मुनि की, सभी मुनिवरों के सामने प्रशंसा की।

सभा में से: क्या गुरु शिष्य की प्रशंसा कर सकते हैं?

महाराजश्री:

क्यों नही? जब शिष्य अद्वितीय···असाधारण आराधना करता है, सिद्धि प्राप्त करता है, जिनशासन की प्रभावना करता है···अभिनव धर्मग्रंथों की रचना

करता है तब गुरुदेव उनकी प्रशंसा करते ही हैं, प्रशंसा करनी ही चाहिये। क्या स्थूलभद्र मुनिवर, कोशा के वहाँ चातुर्मास कर, कोशा को श्राविका बनाकर गुरुदेव के पास गये थे तब गुरुदेव ने स्थूलभद्रजी की प्रशंसा नहीं की थी? भरपूर प्रशंसा की थी।

गुणवान् प्रज्ञावंत शिष्य के असाधारण कार्यों की प्रशंसा करने से शिष्य सत्कार्य के प्रति विशेष उल्लसित होता है। उसका उत्साह बढ़ता है। गुरु के प्रति उसकी श्रद्धा दृढ़ होती है, समर्पणभाव बढ़ता है।

गुरु जैसे शिष्य को उपालंभ दे, वैसे प्रसंगोपात प्रशंसा भी करे :

इसलिये विशेष प्रसंगों में, संतुलित शब्दों में गुरु शिष्य के गुणों की, महान् कार्यों की प्रशंसा करते रहें। प्रशंसा कभी करें ही नहीं और मात्र दोष बताकर उपालंभ ही देते रहेंगे तो शिष्य के हृदय में गुरु के प्रति अभाव... दुर्भाव बढ़ता जायेगा। जब कि शिष्य के हृदय में कभी भी गुरु के प्रति दुर्भाव तो पैदा ही नहीं होना चाहिये। गुरु को गुणवान् प्रज्ञावान् मेधावी शिष्यों के मनोभावों का ख्याल करना चाहिये, ऐसी जिनाज्ञा है। शिष्यों के हृदय चरित्र धर्म की आराधना में उल्लसित बने रहें, इसलिये गुरु को 'सायकोलोजिकल ट्रीटमेंट' यानी मानसिक चिकित्सा भी करनी चाहिये।

श्री देवचन्द्रसूरीश्वरजी, सोमचन्द्र मुनि की तब भरपूर प्रशंसा करते हैं, जब सोमचन्द्र मुनि, देवी सरस्वती की परम कृपा प्राप्त कर लौटे हैं। 'सिद्ध सारस्वत' बन कर लौटे हैं। सभी सहवर्ती मुनिवर, सोमचन्द्र मुनि की प्रशंसा करते हैं।

इस विषय में एक सावधानी रखने की होती है। शिष्य का गुरु से प्रशंसा की अपेक्षा नहीं रखने की है। और गुरु को शिष्य के सत्कार्यों की उपेक्षा नहीं करने की है। यदि शिष्य, गुरु से प्रशंसा की अपेक्षा रखेगा तो वह जब प्रशंसा सुनने नहीं पायेगा तब गुरु के प्रति नफरत करने लग जायेगा। गुरु ने ९९ बार प्रशंसा की होगी, एक बार नहीं की... तो वह शिष्य बोल देगा—'गुरुमहाराज को मेरी कोई कद्र नहीं है। गुरु स्वार्थी हैं...' वगैरह।

हालांकि अयोग्य और अपात्र शिष्य की प्रशंसा करने की है ही नहीं। जो शिष्य प्रशंसा नहीं चाहता है, उसकी ही प्रशंसा करने की है! ज्ञान-दर्शन और चारित्र में शिष्य का उल्लास बढ़ाने की दृष्टि से कभी-कभी उसकी 'उपबृंहणा' करने की है।

सोमचन्द्र मुनि जैसे प्रज्ञावान् थे वैसे गुणवान् थे। गुरुदेव ने जब उनकी प्रशंसा की, वे शरमा गये और दूसरे खंड में चले गये। उनके मन में तो एक मात्र ज्ञानरमणता थी। अब उनको देवी सरस्वती का वरदान मिल गया था!

उन्होंने ज्ञान की चार शाखाओं में पारंगतता प्राप्त की। तर्क [न्यायशास्त्र] शास्त्र में निपुण बने। वेदान्तदर्शन का रहस्य प्राप्त कर लिया। इतिहास [भगवान् ऋषभदेव से···] के पारगामी बने और राजनीति में कौशल्य प्राप्त किया।

तर्कशास्त्र की आवश्यकता :

सोमचन्द्र मुनि प्रज्ञावान् थे इसलिये तर्कशास्त्र का ज्ञान होना बहुत ही आवश्यक था उनके लिए। तर्कशास्त्र बुद्धि को तेजस्वी बनाता है। हर तत्त्व को सोचने का व्यवस्थित मार्ग बताता है। हर बात की सत्यता का निर्णय करने की क्षमता प्रदान करता है। स्वमत को सिद्ध करने की और परमत का खंडन करने की क्षमता प्रदान करता है। वाद-प्रतिवाद करनेवालों को तो तर्कशास्त्र का अध्ययन करना ही चाहिए। तर्कशास्त्र के अध्ययन के बिना मनुष्य वाद-विवाद नहीं कर सकता। करने जाता है तो पराजित होता है! अपमानित होता है। दार्शनिक ग्रन्थों के अध्ययन के लिए भी तर्कशास्त्र का ज्ञान चाहिये।

वेदान्तदर्शन का अध्ययन आवश्यक :

सोमचन्द्र मुनि वेदान्तदर्शन के पारगामी बने थे। वेदान्तदर्शन में सांख्यदर्शन, योगदर्शन और वैशेषिक दर्शन का समावेश हो जाता है। चूंकि ये तीनों दर्शन वेद की मान्यता पर खड़े हैं। आपस के कुछ-कुछ मतभेदों पर वे अलग-अलग अस्तित्व लिये हुए हैं। सोमचन्द्रमुनि ने बौद्धदर्शन का और चार्वाकदर्शन [नास्तिक] का गहरा अध्ययन किया था।

आवश्यक था उस समय इन दर्शनों का अध्ययन। चूंकि राजसभाओं में भिन्न-भिन्न दर्शनों का आपस में वाद-विवाद होता था। उन वाद-विवादों में जय-पराजय का बड़ा महत्व रहता था। राजा उन विवादों में रस लेते थे। इसलिये इसका असर प्रजा पर गिरता था। कभी-कभी तो, जिस दर्शन वाले हारते उनको उस राज्य को छोड़कर दूसरे राज्य में जाना पड़ता था। इसलिये हर दर्शन के, हर धर्म के धर्मगुरु स्वदर्शन के अध्ययन के साथ-साथ परदर्शन का अध्ययन भी करते थे। तर्कशास्त्र का अध्ययन तो सभी दर्शन के विद्वानों को करना ही पड़ता था।

उस काल में जैन और बौद्ध के बीच, जैन और वेदान्ती के बीच, बौद्ध और वेदान्ती के बीच····प्रायः वाद-विवाद होते ही रहते थे। भारत में अनेक राजा थे। हर राजा कोई न कोई धर्म का पालन करता था। जिस धर्म का राजा पालन करता था, उस धर्म के विद्वानों को, विद्वान् साधु-सन्यासियों को राजा अपनी राजसभा में स्थान देता था और अन्य धर्म के विद्वानों के साथ वाद-विवादों का आयोजन करता रहता था।

वर्तमान में न रहे राजा और न रहे वैसे वाद-विवाद ! आज तो भारत धर्मनिरपेक्ष राज्य है। सभी धर्मों का समान स्थान है इस देश में। फिर भी दर्शनों का अध्ययन आज भी किया जाता है। इससे बुद्धि और ज्ञान, दोनों का विकास होता है। दार्शनिक मतभेदों के ज्ञान से बहुत सी बातें सीखने को मिलती है।

श्री सोमचन्द्र मुनि ने इतिहास का ज्ञान, देवी सरस्वती की कृपा से प्राप्त किया था। **"त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र"** इस बात का साक्षी है। इतिहास प्रामाणिक होना चाहिये। आज-कल यानी दो सौ वर्ष से हमारे देश के स्कूलों में जो इतिहास पढ़ाया जाता है, वह अंग्रेजों द्वारा लिखा गया इतिहास पढ़ाया जाता है। इस में नहीं है धर्म का इतिहास, नहीं है जाति का इतिहास, नहीं है संस्कृति का या साहित्य-कला का इतिहास ! इस में है हिन्दुओं की पराजयों का इतिहास, मुगलों की विजय का इतिहास, अंग्रेजों की बहादुरी का इतिहास !

इतिहास का अध्ययन करना हो तो **"त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र"** का अध्ययन करना चाहिए। मूल ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखा गया है। हिन्दी भाषा में इसका अनुवाद हुआ है। अंग्रेजी भाषा में भी अनुवाद हो गया है। हालांकि विश्व की दूसरी भाषाओं में भी अनुवाद होना बहुत आवश्यक है।

ठीक है, यह काम तो होता रहेगा, परन्तु आप लोग कब पढ़ेंगे इस ग्रन्थ को ? बहुत ही रसपूर्ण ग्रन्थ है यह। फालतू किताबें पढ़ने की बजाय, ऐसे ग्रन्थ पढ़ो तो आप का ज्ञान बढ़ेगा और दिमाग भी कुछ सुधरेगा।

कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी [सोमचन्द्र मुनि] ने इस ग्रन्थ की रचनाकर, वास्तव में अद्भुत कार्य किया है।

राजनीति का ज्ञान महापुरुषों को होना चाहिये :

श्री सोमचन्द्र मुनि ने राजनीति का भी गहरा अध्ययन किया था। चूंकि वह राजाशाही का युग था। धर्म राज्याश्रित होते थे। इसलिये, जिम्मेदार जैनाचार्यों को राजाओं के साथ व राजनीतिज्ञों के साथ सम्पर्क बनाये रखना पड़ता था। धर्मरक्षा और धर्मप्रसार-दो हेतु थे इस सम्पर्क के। मात्र जैनाचार्य ही नहीं, अन्य-अन्य धर्माचार्य भी राजाओं से सम्पर्क रखते थे। जब राजा, राजपरिवार व राजनीतिज्ञों से सम्पर्क रखना अनिवार्य हो तब राजनीति का अध्ययन बहुत ही आवश्यक होता है। श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी का पहला परिचय राजा सिद्धराज जयसिंह के साथ था और बाद में राजा कुमारपाल के साथ परिचय हुआ। और दोनों राजाओं के माध्यम से उन्होंने धर्मरक्षा तो की ही थी, धर्म का प्रसार भी कितना अद्भुत किया था !

राजाओं के इर्द-गिर्द कूटनीति···कूट-कपट···वगैरह चलता रहता था। इस में यदि राजनीति का ज्ञान न होता तो मनुष्य बुरी मौत मारा जाता था। राजा का प्रकोपभाजन बन जाता था।

जिनशासन की परम्परा में, राजाओं को धर्मसन्मुख कर, उनके द्वारा प्रजा में धर्मप्रसार करने की पद्धति हजारों वर्षों से चलती थी। अनेक महान् आचार्यों ने राजाओं को प्रतिबुद्ध कर धर्मप्रसार किया था, परन्तु हेमचन्द्राचार्यजी ने राजा कुमारपाल को प्रतिबुद्ध कर देश में जो अहिंसाधर्म का प्रसार किया था वह अद्वितीय था, अद्भुत था।

अलबत्ता, श्री हेमचन्द्रसूरिजी ने मात्र राजनीति के ज्ञान से ही यह काम नहीं किया था, उनके पास दैवी शक्तियाँ भी थी और अद्भुत वचनशक्ति भी थी। सब कुछ मिलाकर जो उनकी दिव्य प्रतिभा बनी थी, उस प्रतिभा से उन्होंने धर्मशासन की उन्नति की थी। धर्मशासन की उन्नति का वर्णन आगे बताऊँगा।

—जिस मनुष्य ने सद्गुरु से श्रावक-जीवन के व्रतों का स्वरूप सुना है, समझा है और व्रत ग्रहण करने का सोच-समझ कर निर्णय किया है, ऐसे व्यक्ति को जिनवचनानुसार विधिपूर्वक सद्गुरु से व्रत ग्रहण करने चाहिए।

ऐसा नहीं सोचना चाहिए, कि 'धर्म तो विशुद्ध चित्त में से ही पैदा होता है। अपना मन निर्मल है तो फिर गुरु के पास जाकर व्रत स्वीकार करने की क्या आवश्यकता है? विधि-प्रदान की क्या आवश्यकता है?

आवश्यकता है इन सभी बातों की। इन बातों से विमल भाव की प्राप्ति होती है। चित्त में विमल भावों की बाढ़ आ जाती है। यही तो श्रेष्ठ उपलब्धि है। श्रेष्ठ फल की प्राप्ति है।

विमल···विशुद्ध भावों को जाग्रत करने वाली प्रशस्त धार्मिक क्रियाओं का कभी भी अनादर नहीं करना चाहिये। धार्मिक क्रियाओं के प्रति अनादर··· अनुत्साह वाले कुछ विद्वान लोग आप जैसे सरल (?) लोगों को भ्रमित नहीं कर दें, इसलिए जाग्रत रहना। आजकल तो आप लोग सब जगह सुनने जाते हो न? दिमाग ठिकाने रख कर सुनना। अन्यथा उत्पथ पर चले जाओगे। जो धर्मक्रियायें आप करते हैं वे भी छोड़ दोगे! दूसरी पापक्रियायें शुरू कर दोगे। दिमाग मलीन भावों से भर जायेगा।

एक परिचित भाई की बात है। वे प्रतिदिन परमात्मा की पूजा करते थे। दो-तीन वर्ष के बाद जब वे मिले, मैंने पूछा :

'क्यों परमात्मपूजा नियमित करते हो न?'

'नहीं साब, मैंने दो वर्ष से पूजा करना छोड़ दिया है।'

'महाराज साहब, आत्मा ही परमात्मा है···फिर मंदिर में जाकर क्यों पूजा करना? ●

क्रमशः

चैत्रगच्छ का संक्षिप्त इतिहास

(डॉ० शिवप्रसाद सिंह)

पूर्वानुवृत्ति

१—भर्तृपुरीयशाखा जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, चैत्रगच्छ की इस शाखा का नामकरण भर्तृपुर (वर्तमान भटेवर, राजस्थान) नामक स्थान से हुआ प्रतीत होता है। इस शाखा से सम्बद्ध तीन लेख मिले हैं। प्रथम लेख वि० सं० १३०३ और द्वितीय लेख वि० सं० १३३४ का है तृतीय लेख…१४ का है, अर्थात् इसके प्रथम दो अंक नष्ट हो गये हैं। श्री पूरनचन्द नाहर और विजयधर्मसूरि ने वि० सं० १३०३/ई० सन् १२४७ के लेख की वाचना इस प्रकार दी है :

"संवत् १३०३ वर्षे चैत्र वदि ४ सोमदिने श्रीचैत्रगच्छे श्रीभद्रेश्वरसंताने भर्तृपुरीयवत्सश्रे० भीम, अर्जुन कडवट श्रे० चूडा पुत्र श्रे० वयजा धांधल पासड उवादिभिः कुटुंबसमेतैः……प्रतिमा कारिता। प्रति० श्रीजिनेश्वरसूरिशिष्यैः श्रीजिनदेवसूरिभिः ।।"

तीर्थङ्कर की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख

प्रतिष्ठा स्थान— **करेड़ा पार्श्वनाथ जिनालय, करेड़ा**

भर्तृपुरीय शाखा से सम्बद्ध द्वितीय लेख वि० सं० १३३८/ई० सन् १२८२ का है, जो शांतिनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण है। मुनि जयन्तविजयजी[१०] ने इस लेख की वाचना इस प्रकार दी है :

"संवत् १३३८ श्रीचैत्रगच्छे भर्तृपुरीय सा० खुनिया भा० होली पु० हरपा केशव वाण रावण बेल पु० नरसिह खीमड हरिचंदेण निजपूर्वजपित्रोः श्रेयोर्थं श्रीशांतिनाथबिंबं का० श्रीवर्धमानसूरिभिः ।।

शांतिनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख

अनुपूर्तिलेख, आबू

इस शाखा से सम्बद्ध तृतीयलेख वि० सं० X १४ का है। यह चित्तौड़ से प्राप्त हुआ है। त्रिपुटी महाराज[११] ने इसकी वाचना इस प्रकार की है :

"संवत् X X १४ वर्षे मार्गसुदि ३ श्री चैत्रपुरीयगच्छे श्रीबुडागणिभतृपुर महादुर्ग श्री गुहिलपुत्रवि X X X हार श्री बडादेव आदि जिन वाभांग दक्षिणाभिमुखद्वारगुफायां कलि श्रुतदेवीनां चतु X X X X लानां चतुर्णां विनायकानां पादुकाघटितसहसाकारसहिता श्रीदेवी चित्तोडरी मूर्ति X X X श्रीभ्र (भ) तृगच्छीय महाप्रभावक श्रीआम्रदेवसूरिभिः X X X श्री सा० सामासु सा० हरपालेन श्रेयसे पुण्योपार्जना व्यधियते।"

यद्यपि इस लेख के प्रथम दो अंक नष्ट हो गये हैं, फिर[२] भी लेख की भाषा शैली पर राजस्थानी भाषा के प्रभाव को देखते हुए इसे १६वीं शती के प्रारम्भ अर्थात् १५१४ वि० सं० का माना जा सकता है।

भर्तृपुरीय शाखा से सम्बद्ध उक्त लेखों से यद्यपि कई मुनिजनों के नाम ज्ञात होते हैं, किन्तु उनके आधार पर इस शाखा के मुनिजन की गुरु-परम्परा की कोई लम्बी तालिका नहीं बन पाती है।

२—**धारण प्रदीपशाखा** यद्यपि प्रतिमा लेखों में 'धारणप्रदीप' नाम मिलता है, जो संभवतः धारणप्रदीप होना चाहिए। इस शाखा से सम्बद्ध २५ प्रतिमालेख प्राप्त हुए हैं, जो वि० सं० १४०० से वि० सं० १५८२ तक के हैं। इनका विवरण इस प्रकार हैं :

१. १४००	तिथिनष्ट	राजदेवसूरि	शांतिनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	धर्मनाथ जिनालय, उपलोगभाऐ, अहमदावाद	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १, लेखाङ्क १०१९
२. १४५७	आषाढ़ सुदि ५ गुरुवार	पासदेवसूरि	श्रेयांसनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	संभवनाथ देरासर, झवेरीवाड़, अहमदाबाद	वही, भाग १, लेखाङ्क ८६६
३. १५०६	पौष वदि ६ सोमवार	विजयदेवसूरि	सुविधिनाथ की धातु की प्रतिमा लेख	शांतिनाथ जिनालय, पादरा	वही, भाग २, लेखाङ्क ५
४. १५०७	वैशाख वदि ११ सोमवार	लक्ष्मीदेवसूरि	विमलनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	अजितनाथ जिनालय, शेखनोपाडो, अहमदाबाद	वही, भाग १, लेखाङ्क ९९८
५. १५०७	"	"	कुन्थुनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, मांडल	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त लेखाङ्क २३०

६.	१५११	माघ सुदि ५	लक्ष्मीदेवसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ चैत्य, थराद	दौलतसिंह लोढ़ा, पूर्वोक्त लेखाङ्क ६७
७.	१५१३	पौष वदि ५ रविवार	,,	नमिनाथ की धातु-प्रातिम का लेख	आदिनाथ देरासर, जामनगर	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त लेखाङ्क २८४
८.	१५१३	,,	,,	अजितनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर चैत्य, थराद	लोढ़ा, पूर्वोक्त लेखाङ्क १७
९.	१५१३	,,	,,	अजितनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर चैत्य, थराद	लोढ़ा, पूर्वोक्त लेखाङ्क ३
१०.	१५१७	ज्येष्ठ सुदि ५ गुरुवार	,,	कुन्थुनाथ की धातु प्रतिमा	जैन देरासर, महुवा	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त लेखाङ्क ३१५
११.	१५१७	ज्येष्ठ सुदि	,,	सुमतिनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, भानीपोल, राधनपुर	मुनि विशालविजय, पूर्वोक्ति लेखाङ्क २१२

१२. १५१७	पौष वदि ५ गुरुवार	लक्ष्मीदेवसूरि	सुविधिनाथ की प्रतिमा का लेख	मोतीसा की टूंक, शत्रुञ्जय	शत्रुञ्जयवैभव लेखांक १५१
			का लेख	शत्रुञ्जय	
१३. १५१७	,,	,,	सुमतिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथदेरासर, अहमदाबाद	मुनि बुद्धिसागर— पूर्वोक्त, भाग-१ लेखांक १०३१
१४. १५१७	,,	,,	कुन्थुनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभजिना सुल्तानपुरा, बड़ोदरा	वही, भाग-२ लेखांक १९९
१५. १५१७	माघ सुदि १० बुधवार	,,	धर्मनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	नेमिनाथ जिना; सेठ की शेरी, राधनपुर	मुनि विशालविजय, पूर्वोक्त, लेखांक-२०७
१६. १५२२	तिथि विहीन	,,	,,	शांतिनाथ— देराशर, जामनगर	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखांक-३६६
१७. १५२२	चैत्र वदि ५	,,	श्रेयांसनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ चैत्य, थराद	लोढ़ा, पूर्वोक्त— लेखांक-१५५

१८.	१५२७	कार्तिक वदि २ शनिवार	ज्ञानदेवसूरि	नमिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिना; लिंबडीपाड़ा, पाटन	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग-१, लेखांक २८४
१९.	१५२८	चैत्रवदि १ गुरुवार	ज्ञानदेवसूरि	धर्मनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ देरासर, जामनगर	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त लेखांक-४१४
२०.	१५२८	पौष वदि ३ सोमवार	,,	विमलनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ चैत्य, थराद	लोढ़ा, पूर्वोक्त—लेखांक-३७
२१.	२५२८	तिथिविहीन	,,	आदिनाथ की धातु की प्रतिमा लेख	चन्द्रप्रभ जिनालय, जानीशेरी, बड़ोदरा	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग-२ लेखांक-१५३
२२.	१५३०	पौष...... रविवार	लक्ष्मीदेवसूरि के पट्टधर ज्ञानदेवसूरि	शीतलनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	नेमिनाथ जिना; शेठ की शेरी, राधनपुर	मुनि विशालविजय—पूर्वोक्त, लेखांक-२६८
२३.	१५३२	वैशाख वदि १० शुक्रवार	सोमदेवसूरि	नमिनाथ की धातु की चौबीसी प्रतिमा का लेख		अगरचन्द नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक-१८१८

२४. १५५४	तिथिविहीन	सोमदेवसूरि	नमिनाथ की धातु की चौबीसी प्रतिमा का लेख	चिन्तामणिपाश्वंनाथ देरासर, कड़ी	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १, लेखाङ्क ७४१
२५. १५८२	वैशाख सुदि १० शुक्रवार	वियजदेवसूरि	,,	जैन मन्दिर, लुआणा, थराद	लोढ़ा, पूर्वोक्त लेखाङ्क ३६७

अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर धारणपद्रीय (धारावद्रीय) शाखा के मुनिजनों की तालिका इस प्रकार बनती है :

?
⋮
राजदेवसूरि [वि० सं० १४००] १ प्रतिमालेख
⋮
पासदेवसूरि [वि० सं० १४५७] १ प्रतिमालेख
⋮
विजयदेवसूरि [वि० सं० १५०६] १ प्रतिमालेख
⋮
सोमदेवसूरि [वि० सं० १५३२-१५५४] २ प्रतिमालेख
⋮
विजयदेवसूरि [वि० सं० १५८२] १ प्रतिमालेख

?
⋮
लक्ष्मीदेवसूरि
[वि० सं० १५०७-१५२८]
१४ प्रतिमालेख
|
ज्ञानदेवसूरि
[वि० सं० १५२७-१५३०]
५ प्रतिमालेख

३—चतुर्दशीपक्ष चैत्रगच्छ की इस शाखा का केवल एक लेख मिला है, जो वि० सं० १५०६ का है। मुनिबुद्धिसागर[१२] ने इस लेख की वाचना इस प्रकार दी है :

''संवत् १५०६ वर्षे माघ सुदि १३ श्री श्रीश्रीमालज्ञातीय सा० मेलाभा० करमादेसुत श्रीरंग भा० अमरी स्वश्रेयोहेतवे श्रीश्रीचन्द्रप्रभनाथमुख्य चतुर्विंशतिपट्टः कारितः चतुर्दशीपक्षे चैत्रगच्छे श्रीगुणदेवसूरिसंताने श्रीजिनदेवसूरिभिः प्रतिष्ठितः शुभं भवतु ।।''

प्रतिष्ठा स्थान—श्री अमीजरा पार्श्वनाथ जिनालय, जीरारवाडो, खंभात

४—चंद्रसामीयशाखा चैत्रगच्छ की इस शाखा से सम्बद्ध कई लेख मिले हैं, जो वि० सं० १५१० से वि० सं० १५४७ तक के हैं। इन सभी लेखों में मलयचन्द्रसूरि के पट्टधर लक्ष्मीसागरसूरि का प्रतिमाप्रतिष्ठापक के रूप में उल्लेख है। इनका विवरण इस प्रकार है :

१.	१५१०	माघ सुदि ५ शुक्रवार	मलयचन्द्रसूरि के पट्टधर लक्ष्मीसागरसूरि	चन्द्रप्रभ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	महावीर जिनालय, भोंयरा शेरी, राधनपुर	मुनि विशालविजय, पूर्वोक्त, लेखांक १६३
२.	१५१८	पौष वदि १३ मंगलवार	,,	शीतलनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	कुन्थुनाथ जिनालय, मांडवीपोल, खंभात	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक ६४५
३.	१५२०	चैत्र वदि ८ शुक्रवार	,,	विमलनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, भानीपोल, राधनपुर	मुनिविशाल विजय पूर्वोक्त, लेखांक २२६ एवं विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त लेखांक ३४६

(क्रमशः)

महाराजा श्रेणिक

श्रीमती राजकुमारी बेगानी

पूर्वानुवृत्ति

अब राजा पुनः पूर्व बात पर आए कि चोर को प्राण दण्ड दो। अभय ने प्रत्युत्तर दिया—महाराज अब वह चोर-चोर नहीं आपका गुरु है। और गुरु को कभी प्राण दण्ड नहीं दिया जा सकता। राजा दंग रह गया अभय की चतुराई पर, ज्ञान पर, उसके आश्चर्य में डालने वाले विवेक पर। अब चोर का अभय ने अभय ही नहीं करवाया गुरु दक्षिणा से भी निहाल करवाया।

महावीर भक्त श्रेणिक नित्य ही अपने परिवार सहित भगवान् महावीर को वन्दन करने जाते। महाराज तो सम्यक्त्व की अतुल गहरायी में उतर कर ही रह जाते किन्तु उनके भव्य पुत्र नन्दीषेण, मेघकुमार आदि तो दीक्षित ही हो गए और अपने उत्कृष्ट तप-त्याग से आने वाले कठिन से कठिन, कठोर से कठोर महा कष्टप्रद उपसर्गों को सहन कर निकाचित कर्मो का क्षय किया और उच्चगतियों को प्राप्त किया—महावीर संघ के गौरव को उज्जवल किया।

महाराज की भक्ति भी इतनी अनन्य हो गयी थी कि उन्होंने नियम लिया था कि प्रभू चाहे जहां भी रहें उनका कुशल क्षेम पाए बिना मैं आहार ग्रहण नहीं करूँगा। फिर भी न जाने किस दुष्कृत कर्म के कारण वे तप-त्याग करने में स्वयं असमर्थ रहते। फिर भी संसार की असारता जीवन की क्षणभंगुरता और वस्तुओं का यथार्थ स्वरूप उनकी दृष्टि से ओझल नहीं था।

नित्य की भाँति ही मगधराज श्रेणिक महावीर के दर्शन करने गुणशील चैत्य में पधारे हैं। समवसरण में प्रविष्ट होते ही भगवान के शान्त प्रशान्त तेजस्वी मुख पर दृष्टि पड़ी। सौ-सौ सूर्यों से भी अधिक प्रकाशवान उनके मुख से विकीर्ण होती आभा ने उनके चारों ओर एक आभा वलभ ही बना दिया था—लगता था जैसे वह वलय भी नहीं झेल पा रहा है उस ऊर्जस्वित दिव्य प्रकाश पुंज को। श्रद्धा-भक्ति भरे हृदय से भगवान् को बन्दन-नमन कर श्रेणिक भी सुनने लगे धारा प्रवाह रूप से अखण्ड चलती प्रभु की देशना को। कितनी नैसर्गिक शान्ति थी वहाँ। देवों द्वारा बरसाये गये सुगन्धित जल और पंचवर्षीय

पुष्पों की सुवास से सुवासित था सारा वातावरण। सारे अशुभ-पुद्‌गल नष्ट-प्राय हो रहे थे वायुमण्डल में सर्वत्र बिखरे शुभ पुद्‌गलों के प्रभाव से। लोग *भूल गए थे वैर भाव बस सर्वत्र था दुर्लभ समता का साम्राज्य।*

मगधपति ने भगवान् से पूछा—'भगवान् केवल ज्ञान का उच्छेद कब होगा ?'

उसी समय वहाँ महान तेजस्वी विद्युत्माली नामक देवता अपनी चार देवियों के साथ आया हुआ था। उसकी ओर संकेत करते हुए महावीर ने कहा—'इस पुरुष के बाद केवल ज्ञान नष्ट हो जाएगा। 'किन्तु प्रभु यह तो देव है ? क्या देवों को भी केवल ज्ञान हो सकता है ?' राजा ने पूछा ?

भगवान् ने श्रेणिक की आतुरता को शान्त करते हुए कहा—'यह देव आज से सातवें दिन देवलोक से च्यवित होकर तेरी नगरी के ऋषभदत्त व्यापारी के यहाँ पुत्र रूप में जन्म लेगा। उसका नाम होगा जम्बू कुमार। मेरे सुधर्मा नामक शिष्य का यह शिष्य बनेगा और अन्तिम केवली होगा।

भगवान् महावीर और श्रेणिक महाराज के मध्य प्रश्नोत्तर चल ही रहे थे कि एक कुष्ट रोग से गलित पुरुष ने आकर प्रभु को वन्दन किया और पागल कुत्ते की भाँति भूमि पर ही बैठ गया। तत्पश्चात् अपनी देह से निकले दुर्गन्ध युक्त पीप से भगवान के चरणों को बारम्बार अर्चित करने लगा। क्रोध से तमतमा उठे मगधराज। सोचने लगे—बाहर निकलते ही ऐसे दुष्ट को मैं जीवित नहीं छोड़ूँगा। इसकी ऐसी धृष्टता ? इतने में ही भगवान् को छींक आयी जिसे सुनकर वह कुष्टी बोला—'मृत्यु पाओ—प्राप्त करो।' अब तो श्रेणिक और भी क्रुद्ध हो उठा।

थोड़ी देर बाद श्रेणिक को भी छींक आयी। तब वह कुष्टी बोला—"दीर्घकाल तक जीएँ।" तभी अभयकुमार को भी छींक आ गयी। कुष्टी तुरन्त बोला —'जीएँ या मर जाएँ' और अन्त में कालसौरिक को छींक आयी तब वह बोला—"जिए भी मत मरे भी मत"। महावीर को छींक आने पर उसने जो शब्द कहे थे उन शब्दों ने श्रेणिक को विशेष रूप से क्रुद्ध कर दिया। अतः उन्होंने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि बाहर निकलते ही इसे पकड़ कर मेरे पास लाना।

देशना समाप्त होते ही उस कुष्टी ने प्रभु को नमन किया और श्रेणिक के सिपाहियों के देखते-देखते दिव्य देह धारण कर आकाश मार्ग से उड़ गया।

सिपाहियों द्वारा यह समाचार सुनकर श्रेणिक ने भगवान् से उसका स्वरूप पूछा।

भगवान् ने कहा—'श्रेणिक वह कुष्टी नहीं दर्दुरांक नाम का देव था। तुम्हारी परीक्षा लेने के लिये ही उसने यह माया रची थी। वह पीप से नहीं गोशीर्ष चन्दन से मेरा विलेपन कर रहा था किन्तु दृष्टि मोह के कारण तुमको विपरीत दिखायी दे रहा था।

श्रेणिक ने कहा—'प्रभो, जब आपको छींक आयी तो उसने कहा—'मृत्यु पावे' मुझे छींक आयी तो कहा—'दीर्घकाल तक जीए''। अभयकुमार को छींक आयी तो कहा—'जीए या मरे' एवं काल सौरिक को छींक आने पर बोला—'जीए भी मत, मरे भी मत'। क्या आशय है इन विचित्र वाक्यों का।

प्रभु ने उत्तर दिया—'मुझे छींक आने पर मृत्यु पाए कहा इसका आशय है आप संसार में क्यों रह रहे हैं। शीघ्रता से मोक्ष पा कर अनन्त सुख के भोक्ता बनिये। तुम्हें छींक आने पर 'दीर्घकाल' तक जीए'' कहने का आशय था तुम जब तक जीवित हो तभी तक सुखी हो बाद में………… ?

बाद में क्या भगवन् ? महावीर के मुख से निकले अधूरे वाक्य को सुनकर श्रेणिक चौंक उठे और आगे जानने के लिये अधीर हो गए।

उसके बाद तो श्रेणिक प्रथम नरक में चौरासी हजार वर्ष से भी अधिक आयुष्य वाला तुम्हें नारकी बनना पड़ेगा। अभयकुमार को 'जिए या मरे' इसलिए कहा वह जीएगा तो धर्म ध्यान करेगा मरेगा तो अनुत्तर विमान में एकावतारी देव होगा। और कालसौरिक तो यहाँ भी जीते जी पाप कर रहा है और मरने पर भी सातवें नरक में नारकीय बनेगा। इसलिए उसने कहा था—'तू जीए भी मत मरे भी मत।'

किन्तु अपना भविष्य सुनकर श्रेणिक काँप उठे—बोले—'भगवान् जिसके सिर पर आप जैसे अनन्त शक्तिशाली का हाथ है वह नरक में क्यों जाएगा ?

भगवान् ने उत्तर दिया—'अपने क्रूर नीच कर्मों के कारण।'

किन्तु आपकी पावन शरण जिसने ग्रहण कर ली भला—क्रूर से क्रूर कर्म भी उसका क्या बिगाड़ सकते हैं ?

श्रेणिक—अपने किए कर्मों का फल भोगने में मनुष्य उसी भाँति स्वतन्त्र है जिस भाँति कर्मों को करने में। हाँ इतना अवश्य है हलके अशुभ कर्म जप, तप, त्याग, तपस्या, ज्ञान-ध्यान द्वारा नष्ट किए जा सकते हैं। किन्तु क्रूर कर्म नहीं। उन्हें तो—भोगना ही पड़ता है—क्योंकि वे निकाचित कर्म होते हैं। भगवान ने कहा।

ऐसा कौन सा क्रूर कर्म किया मैंने ? याद कर श्रेणिक—तूने अरण्य में कितनी क्रूरतापूर्वक उस गर्भवती हिरणी को अपने एक ही बाण से मारकर उस सफलता पर फूला नहीं समाया। मारे प्रसन्नता के कितना अट्टहास कर उस विशाल अरण्य को भी गुंजायमान कर दिया था। बेचारी प्राणों के भय से भयभीत हिरणी अपने विशाल करुणा भरे नेत्रों से तुम से अपने प्राणों की भीख माँग रही थी। किन्तु तेरी आँख में उतरी क्रूर हिंसा ने तुझे उस मूक याचना को समझने ही नहीं दिया। वस उस समय तू ने नारकी का आयुष्य बाँध लिया था जिसे भोगे बिना छुटकारा नहीं।" भगवान का उत्तर था।

किन्तु भगवान् कोई तो मार्ग बताइये और मुझे नरक के महान् कष्ट से बचाइये ?

अब कुछ नहीं हो सकता श्रेणिक—किन्तु चिन्ता मत कर—तू नरक में अवश्य जाएगा फिर भी आगामी चौबीसी में इसी भरत क्षेत्र में पदमनाभ नामक प्रथम तीर्थंकर बनेगा उस समय मुझमें और तुझमें कोई भेद ही नहीं रह जाएगा। भगवान् बोले—

सुनकर कुछ तो संतुष्ट हुए श्रेणिक लेकिन फिर भी बोले—प्रभु कोई उपाय है तो अवश्य बताएँ ? 'तेरा निकाचित कर्म टल नहीं सकता फिर भी विश्वास के लिये कहता हूँ—तू तेरी कपिला दासी के हाथ से साधुओं को भिक्षा दिला—अथवा काल सौरिक से एक दिन के लिये कसाई कार्य बन्द करवा दे या पुणिया श्रावक एक सामायिक का फल तुझे दे सके तो अवश्य ही काम बन सकता है।

भगवान का वचन सिद्ध करने के लिये श्रेणिक परिवार सहित घर लौटे। किन्तु लाख कोशिशों के करने पर भी उपर्युक्त तीनों बातों में से कोई भी पूरी नहीं करवा सके। अब तो निरन्तर श्रेणिक पश्चाताप की अग्नि में जलते हुए सोचते रहते धिक्कार है मुझे मैंने ऐसे गहन निकाचित कर्मो का बन्ध किया है।"

एक दिन दर्दुशंक नामक देव ने महाराज श्रेणिक के समकित की परीक्षा ली और उनकी दृढ़ और अटूट श्रद्धा भक्ति देखकर देव परम प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रकट होकर श्रेणिक को एक दिव्य हार और दो गोलक प्रदान किए। राजा ने वह दिव्य हार चेलना को दिया और दोनों गोलक नन्दा रानी को।

नन्दा अप्रसन्न हो गयी—सोचने लगी दिव्य हार तो चेलना को और मुझे मात्र ये गोलक। उसने इन दोनों गोलकों को स्तम्भ पर दे मारा गोलक फूट गए और उनमें से एक के भीतर दो दिव्य कुण्डल और दूसरे में बहुमूल्य रेशमी वस्त्र निकले प्रसन्न होकर रानी ने उन्हें ग्रहण कर लिया।

अभयकुमार महामान्य अवश्य थे। राजसी समृद्धि और वैभव उनके चारों ओर *बिखरा था फिर भी मन तो कीचड़ में रहे कमल की भाँति इन सबसे* निर्लिप्त था। संसार की असारता, जीवन की क्षणभंगुरता उन्हें प्रतिक्षण वैराग्य की ओर लिए जा रही थी। बहुत-बहुत सेवा की थी उन्होंने अपने पिताश्री की। अभय के मन्त्रित्व में सारा मगध सुख शांति और सम्पति में लहरा रहा था। जब भी कोई कार्य कितना भी कठिन और दुष्कर क्यों न रहा हो अभय ने उसे पूर्ण किया। चाहे वह रोणिणेय चोर के पकड़ने जैसा असम्भव कार्य ही क्यों न रहा हो।

एक दिन फिर भगवान गुणशील चैत्य में पधारे। अभय उनके दर्शनार्थ गया। आज तो उनकी वाणी ने उसे झकझोर ही दिया। घर आते ही महाराजा श्रेणिक के चरणों में जाकर दीक्षा लेने की आज्ञा माँगी। महाराज ने उसे बहुत समझाया—किन्तु अभय नहीं माना अन्ततः उन्हें उसे दीक्षा लेने की अनुमति देनी ही पड़ी। पुत्र के साथ रानी नन्दा ने भी प्रभु से चारित्र अंगीकार किया। नन्दा ने दीक्षा लेने के पूर्व अपने दिव्य कुण्डल व रेशमी वस्त्र पुत्र हल्ल-विहल्ल को दे दिए।

कठोर तप साधना कर अभयकुमार सर्वार्थ सिद्ध विमान में महान ऋद्धिवन्त देव रूप में उत्पन्न हुए।

अब राजा का मन भी उचाट हो गया था। वे सोचने लगे—राज्य का उत्तराधिकारी तो मेरा ज्येष्ठ पुत्र, महान् बुद्धिमान अभयकुमार था—किन्तु जब उसने दीक्षा ग्रहण कर ली तो अब मुझे यह राज्य कुणिक को दे देना चाहिए। क्योंकि वह परम पराक्रमी है। ऐसा सोचकर उन्होंने अपना अट्ठारह लड़ा हार और सेचनक हाथी देकर हल्ल-विहल्ल को भी संतुष्ट किया और शुभ मुहर्त में कुमार कुणिक को राज्यभार देने का निश्चय किया।

किन्तु होनी कुछ और ही थी—कुमार कोणिक की नीयत बिगड़ गयी थी। वह सोचने लगा—'धिक्कार है मेरे पिता को—ज्येष्ठ पुत्र अभय ने तो दीक्षा ग्रहण कर ली और वे राज्य मोह में अब भी फँसे हैं कितने विषयांध हैं पिताजी। अब तो मेरा कर्तव्य है कि इन्हें जबरदस्ती—राज्य सिंहासन से उतार कर कारागृह में डाल देना चाहिए और मुझे स्वयं राजमुकुट धारण कर राज्य को ग्यारह भागों में बाँट देना चाहिए। उसने अपना मनोभाव भाइयों पर प्रकट किया। भवितव्यतावश सब कुणिक की बातों से सहमत हो गए।

एक दिन अवसर पाकर कुणिक ने अपने विचारों को कार्यान्वित कर डाला। निस्तब्ध रह गए महाराज! अब श्रेणिक कारागृह में बन्द ही नहीं थे बल्कि उनके ऊपर कड़ा पहरा था कि कहीं कोई उनसे मिल नहीं पाए।

तत्पश्चात कुणिक मगध के सिंहासन पर बैठा। वह स्वयं को इतना महान समझ बैठा कि चक्रवर्ती बनने के लिये पृथ्वी के समस्त राजाओं को जीत लिया और तीन खण्ड पृथ्वी का अधिकारी बना—किन्तु क्या बन पाया तेरहवां चक्रवर्ती ?

नहीं। एक काल में बारह ही चक्रवर्ती होते हैं और वे हो चुके थे अतः लाख प्रयत्न करने पर भी ऐसा नहीं कर पाया। वह लालसा उसके मन में ही रह गयी।

इधर महाराजा श्रेणिक ने भी अपना आयुष्य पूर्ण कर कारागार के महान् कष्टों के मध्य ही परलोक को प्रयाण किया।

कोणिक के राजा बनने के सोलह वर्ष पश्चात् भगवान महावीर मोक्ष पधारे

अन्ततः लगभग बत्तीस वर्षों से भी अधिक समय तक राज्यसुख भोग लेने के पश्चात् कुणिक भी मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसकी मृत्यु के पश्चात् मगध के सिंहासन पर उसी का पुत्र उदायी मगध सम्राट बना। उसकी राजधानी चम्पानगरी थी।

॥ समाप्त ॥

स्व० नरेन्द्र सिंह जी बैद
की पुण्य स्मृति में

—मीरा बैद
८३-बी, विवेकानन्द रोड,
कलकत्ता-७००००६
फोन : २४१-०७१९

संकलन

पर्युषण लोकोत्तर पर्व है

पर्युषण श्रमण-संस्कृति का विशिष्ट पर्व है। श्रमण विचारधारा एवं श्रमण-परम्परा में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। 'पर्व' का अर्थ है—परम पवित्र दिवस। वैसे साधना-पथ के पथिक के लिए जीवन का प्रत्येक दिवस ही क्यों, श्रमण-परम्परा में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक क्षण पवित्र है, पर आज का दिन विशेष रूप से पवित्र है। पर्व दो प्रकार के होते हैं—लौकिक और लोकोत्तर। लौकिक-पर्व का अभिप्राय है—हर्ष, उल्लास और आमोद-प्रमोद। वह शरीर के पोषण तक ही सीमित है। वह शरीर में स्थित अनन्त चेतनामय ज्योति तक नहीं पहुंचता। इसके विपरीत लोकोत्तर-पर्व शरीर की सीमाओं से ऊपर उठकर ज्योतिर्मय चेतना के दिव्य-भव्य लोक में प्रविष्ट होकर मानव को, साधक को आत्मरत, आत्म-संलग्न एवं आत्म-प्रिय बनाता है। इसमें शरीर का भले ही शोषण हो, आत्मा का पोषण ही होता है। शरीर को भोजन भले ही न दिया जाए, किन्तु आत्मा को तप, त्याग, विराग, संयम और विवेक का पर्याप्त भोजन मिलता ही है। आत्मा भौतिक नहीं, एक दिव्य शक्ति है। अतः उसका भोजन भी दिव्य एवं अमृतमय होता है। इसलिए इस महापर्व के दिन साधक भौतिक भोजन का परित्याग करके, आध्यात्मिक भोजन करता है, जिससे उसकी अनन्त चेतन शक्ति एवं आत्म-ज्योति परिपुष्ट होती है, यही है लोकोत्तर पर्व की मूल भावना।

श्री विजय मुनिजी म० 'शास्त्री'

साभार—श्वेताम्बर जैन १६-९-९६

जैन पत्र-पत्रिकाएँ कहाँ / क्या

जिनवाणी—सितम्बर '९६

शान्ति के विविध रूप, सम्यग्दर्शन, तनावमुक्ति धर्मसमाज और व्यक्ति ? आखिर यह अशान्ति क्यों, विदेशों में जैन धर्म, मद्रास शिविर की यात्रा, गुण निधान, जिज्ञासा और समाधान, सकारात्मक चिन्तन से स्वास्थ्य लाभ, पाप-पुण्य विषयक ज्ञातव्य तथ्य, क्रिया पालन में सेंठा, पुण्डरीक और कण्डरीक, साधना का जीवंत स्मारक, क्रूरता विरहित सौन्दर्य प्रसाधन की सूची, स्वाध्यायी परिचय, साहित्य समीक्षा, समाज दर्शन, श्रद्धांजलि, साभार प्राप्ति स्वीकार ।

जैन प्रकाश सितम्बर '९६

सिकन्दराबाद में, पन्द्रह अनुशासन, पर्वराज पर्युषण, क्यों नहीं पनप··· ? अमृतयोगी, सत्ता और धर्म, चाह गयी चिन्ता मिटी, आइने के सामने, लोकमान्यसंत, सच्चाधन ।

JAIN JOURNAL, Jan. 1996

Punyakusala's Indebtedness to Magha—Dr. Satyavrat, Danacintamani Attimabbe—Dr. Kamala Hampana, Vijayadeva Suri of Tapagacha—Ramballabh Somani, Book Review—King Sudraka and his drama by Biswanath Banerjee—Satya Ranjan Banerjee, syntactic studies of Indo-Aryan languages by Sukumar Sen—Satya Ranjan Banerjee.

सौजन्य से :

ARBEITS INDIA

Export House recognised by Govt. of India

Proprietor : **SANJIB BOTHRA**

8/1, MIDDLETON ROW,

5th Floor, Room No. 4

CALCUTTA-700 001

Phone : 201029/6256/4730

Telex : 021-2333 ARBI IN

Fax No. : 0091-33290174

WB/NC-330
Vol. XX No. 6 **TITTHAYARA** **October 1996**
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

आ. श्री कैलाससागर सूरि ज्ञानमंदिर
महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा
गांधीनगर. पिन-382009